अर्वाचीन संस्कृत लहरी–काव्यों में पर्यावरण चिन्तन

*ओम प्रकाश जाटव
*डॉ. राजेश कुमार बैरवा

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में अनेकानेक विधाओं में काव्य लिखा जा रहा है। वर्तमान संस्कृत साहित्य में अनेक परिवर्तन एवं परिवर्धन दिखायी दे रहे हैं। अतः वर्तमान की अनेक समस्याओं व जीवन के यथार्थ को भी वर्णित किया गया है। आज पर्यावरण प्रदूषण संसार में विकराल रूप धारण किया हुआ है और इस समस्या का चिन्तन वैज्ञानिक धरातल पर तो किया जा रहा है, साथ ही उससे मुक्ति पाने के लिए भी अनेक उपाय किये जा रहे हैं। अनेक प्रकार की संस्थाऐं व साहित्य में भी पर्यावरण संरक्षण के लिए सचेत किया जा रहा है।

संस्कृत के अर्वाचीन लहरी–काव्यों में पर्यावरण प्रदूषण पर चिन्तन किया गया है। पं. विद्याधर शास्त्री की **'वैचित्र्य लहरी'** में कहा गया है कि मानव ने प्रकृति पर विजय प्राप्त कर ली है किन्तु आज भी अतिवृष्टि, अनावृष्टि, ग्रीष्म–प्रकोप, शीत–प्रकोप, विद्युत्पात आदि के साथ भयंकर बीमारियाँ सबको उथल–पुथल कर देती हैं। प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी की **'बसन्तलहरी'** में इस बात पर चिन्ता व्यक्त की गयी है कि आज बसन्त कहीं लुप्त हो गया है तथा वाहनों के आने–जाने से सड़के धुएँ व पेट्रोल की गंध से व्याकुल हैं।

यथा – **यानागमव्यतिकराकुलिताश्च मार्गाः**
पित्रोलगन्धपरिपूरित दिङ्मुखास्ते।
धूमः प्रसर्पति च राजपथे पुरेऽस्मिन्
धूलिं बिभर्ति वसुधाऽसिऽमराङ्का।। (बसन्त.17)

धुएँ व प्रदूषित वायु के कारण बसन्त की शोभा नष्ट हो रही है। लेकिन फिर भी मनुष्य प्रकृति के इस बदलाव से शिक्षा ग्रहण नहीं करता और अपने सीमित स्वार्थ के कारण पेड़ों को काटने व वन–सम्पदा को नष्ट करने में लगा हुआ है।

पर्यावरण प्रदूषण के कारण वर्तमान में बसन्त समय पर नहीं आता और आते–आते रह जाता है। अर्वाचीन संस्कृत साहित्य की विविध विधाओं के सिद्धहस्त कवि डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी लिखते हैं कि जिस प्रकार शब्द स्मृति तक आकर रह जाते हैं। उसी प्रकार बसन्त भी आते हुए रह जाता है। यथा–

शब्दा यथा स्मृतिमुपेत्य पुनर्विलीना
सीदन्ति चित्तजगति क्वचिदेककोणे।
उद्भिद्यतेऽफ च विनाशमुपैति सद्यः

काव्याङ्कुर कविमनः सु तथा बसन्तः।। (बसन्त. 1)

प्राचीन समय से ही चैत्र और वैशाख दो महीने बसन्त की शोभा का विस्तार करते हैं। परन्तु वर्तमान में मधुमास बसन्त की शोभा का विस्तार नहीं करता। कवि कहता है कि मैं बसन्त को बार–बार खोजता हूँ किन्तु बसन्त कहीं विलीन हो गया है। खोजने पर भी अपने चारों ओर बसन्त की शोभा नजर नहीं आती है। यथा–

अन्वेषणु तु विदधे बहुशः समन्ता–

न्नेतुं बसन्तसमयं नयनायनं स्वम्।

व्यस्तः समस्तजगति प्रविभक्तरूपो

गूढं क्वचित् स निलये विलयं प्रयाति।। (बसन्त. 4)

आज मनुष्य ने विशाल भवनों का समूह खड़ा कर लिया है। विकास व आधुनिकता के चक्कर में मनुष्य ने पेड़ों को काटकर वहाँ विशाल इमारतें अथवा 'मल्टीस्टोरीज' खड़ी कर ली है। अतः विशाल भवनों को खड़ा कर पर्यावरण की क्षति को लेकर कवि बहुत चिन्तित है। अब स्वार्थ के वशीभूत हो मनुष्य ने आम्र के कुंजों को काट दिया है। अतः प्रातः से सायं तक खोजने पर मात्र बसन्त की गन्ध सूँघ पाता हूँ। शाम को भ्रमण पर निकलने पर मात्र दो तीन ही पेड़ दिखायी देते हैं। यथा–

सायं त्ववाप्य समयं भ्रमणाय यातो

गच्छामि निर्जनपथेनतमस्तकोऽहम्।

द्वित्रान् स्थितान् निभृतमत्र विलोकयामि

वृक्षान् विषण्णहृदयानिव सज्जनांस्तान्।। (बसन्त. 8)

अर्थात् निर्जन मार्ग पर माथा झुकाये दो–तीन पेड़ खड़े दिखायी देते है जैसे एकान्त में खिन्न मन वाले सज्जन खड़े हों। यहाँ कवि ने पेड़ों के माध्यम से देश व समाज के सांस्कृतिक पर्यावरण के अवमूल्यन की ओर भी संकेत किया है। आज समाज में सज्जन व्यक्ति का बसन्त की तरह एकान्त व खिन्न मन है।

पेड़ों के कटने व वनों के अभाव में विश्व का पर्यावरण प्रदूषित हो गया है। समस्त भूमण्डल सूर्य की तीक्ष्ण गर्मी व आग में जल रहा है। बसन्त की समस्त शोभा झुलस सी गयी है तथा सागर के तल पर तैल बिखरा पड़ा है। कवि ने इस सबका वर्णन निम्न पद्य में किया है–

वासन्तिकी दहति यत्र समस्त शोभा

भूमण्डले ज्वलति सङ्गरतीक्ष्णवह्नौ

छायाश्चरन्ति कुसृताः पिशिताशनानां

तैलेन सागरजलं परिदूषययन्त्यः।। (बसन्त. 12)

उपर्युक्त श्लोक में कवि ने ईराक की खाई में एक तैल से भरे जहाज से तेल रिसाव के कारण होने वाले प्रदूषण की घटना की ओर संकेत किया है। समुद्र–जल में फैलता प्रदूषण कवि के लिए चिंता का विषय है। सम्पूर्ण वायु, जल व पृथ्वी के प्रदूषित होने के कारण संसार में भयावह स्थिति बनी हुयी है तथा बसन्त दूर खड़ा हुआ

सम्भावित विश्वयुद्ध को देख रहा है। विश्वयुद्ध से जिस प्रकार मानवता को विनाश का खतरा है, उसी प्रकार पर्यावरण प्रदूषण से भी सम्पूर्ण प्राणी जगत् के सामने विनाश का खतरा उपस्थित है। यथा–

दूराददृश्य इव पश्यति विश्वयुद्धं

सम्भावितं भयकरं बत भीतभीतः।

सोऽयं बसन्तसमयः समयातिपातात्

क्षीणे विनिः श्वसिति किञ्चं शनैरूपैति।। (बसन्त.14)

कवि ने प्रकृति का पूर्णरूपेण मानवीकरण किया है। वे कहते है कि बसन्त के समय में बसन्त को विलीन देखकर अत्यन्त खिन्न होकर पेड़ों के समूहों से पुराने पत्ते भूमितल पर गिर रहे हैं मानो बसन्त की विलीनता पर वृक्ष अश्रु बहा रहे हों। यथा–

एवं बसन्तसमयं विगतं विलीनं

चास्मिन् बसन्तसमये प्रविलोक्य भूयः।

खिन्ना भृशं विनिपतन्ति धरातलेऽमी

जीर्णाश्च पर्णनिचमा द्रुमसन्ततीनाम्।। (बसन्त.15)

बूढ़ा विन्ध्याचल हड्डियों का ढाँचा रह गया है। रुग्ण हुए पितामह की तरह ध्यान से पेड़ों की पाँत रूपी गोद में बसन्त रूपी दुबले पतले पौधें को दुलार रहा है। वाहनों के आगमन से सड़कें व्याकुल हैं। धुआँ से लोगों के मुँह घुट गये हैं तथा प्रदूषित वायु निगल रहे हैं। यथा –

धूमावृतानि वदनानि तथा ध्वगानां

वायुं प्रदूषणयुतं निगिरन्ति भूमः।

धूल्याकुलानि विविधानि च वाहनानि

निष्पिष्य गाढमिह यान्ति बसन्तशोभाम्।। (बसन्त. 18)

इस प्रकार विविध वाहन नगर शोभा को पीसते निगल जाते हैं। आज की व्यस्त जिन्दगी में कामों में लगे लोग बसन्त के सौन्दर्य के प्रति उदासीन हो गये हैं। तितली घूम घूमकर फूलों का रस खोजकर थक गयी है। कोयलों का कंठ रुद्ध हो गया है तथा घोंसला बनाने के लिए तिनके खोजते–खोजते पक्षी थक गये हैं। यथा–

मुग्धः स्वनीडरचनाकुलितश्च पक्षी

श्रान्तस्तृणस्य निचयं सततं विचिन्वन्।

घट्टस्य पट्टययुगमध्यगतं वसन्तं

गोधूमधान्यमिव पश्यति पिण्यमाणम्।। (बसन्त.24)

वर्तमान परिस्थितियों में बसन्त का आगमन बहुत ही कठिन है अतः कवि वर्णन करता है कि आजकल

शिशिर व ग्रीष्म बढ़ गये हैं अर्थात् एक ओर साम्राज्यवाद का शिशिर राक्षस की तरह खड़ा है, दूसरी ओर आतंकवाद की दुष्टता ग्रीष्म की तरह मुंह बाँधे खड़ी है। दोनों के बीच में उत्कण्ठित होता हुआ बसन्त प्रकट हो तो कैसे हो? यथा–

साम्राज्यवादशिशिरः कुणपोऽन्तरासा–
वातङ्वादखलता च बहिर्निदाघः।
उत्कायमान उभयोरिह चान्तराले
व्यक्तिं प्रयातु कथमेष वसन्तकालः।। (बसन्त. 26)

आज की नवीन सभ्यता में प्रकृति व पर्यावरण के साथ मनुष्य का सानिध्य समाप्त हो गया है। आम्रकुंजों का स्थान नगर की अट्टालिकाओं ने लिया है। अतः राजमार्ग के बीचों बीच बसन्त भिखारी की तरह चुपचाप चल रहा है। आजकल पारम्परिक रीतियों और परम्पराओं में हो रहे परस्पर द्वन्द्व में बसन्त एक विस्थापित शरणार्थी है जो विवश होकर अन्यत्र घर ढूँढ रहा है। अतः कवि लिखते हैं कि–

द्वन्द्वेऽत्र साम्प्रतिकनूतनसभ्यताया
रीत्या पुरा प्रचलितैर्व्यवहारजातैः।
विस्थापितश्च शरणार्थिसमो वसन्तो
गेहं परत्र विनशस्तबनुसन्दधाति।। (बसन्त. 31)

पर्यावरण प्रदूषण का नुकसान सबको भुगतना पड़ रहा है। किसान वर्ष भर खेतों में काम करता है और जब गेहूँ की फसल लहलहाने लगती है तो किसान प्रसन्न हो जाता है कि उसका श्रम सफल हो गया परन्तु तभी ओलों की तुमुल वर्षा हो उठती है और सारी फसल नष्ट हो जाती है और दरिद्र किसान अपने भाग्य को कोसता रह जाता है। अतः कहा गया है कि–

यावत् कृषीवलजनाः सफलश्रमाः स्युः।
तावद् ववर्ष तुमुलं करकैस्तु देवो
गोधूमशस्यनिवहः शयितो धरण्याम्
ध्वस्तो मनोरथवाङ्कुरपुण्यराशिः
क्रोशन्ति भाग्यसरणिं कृषका दरिद्राः।। (बसन्त. 41–42)

'निदाघलहरी' में भी डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने अन्तः प्रकृति और बाह्य प्रकृति दोनों का संश्लेष प्रस्तुत करते हुए समकालीन जीवन में रचना के संकट तथा पर्यावरण के विनाश को लेकर चिन्ता का भाव व्यक्त किया है। यथा–

दाहं दाहमयं लोकानीतिभीतिः प्रसारयन्।
आतङ्कवादिखलवन्निदाघो दाघमश्नुते।। (निदाघ. 1)

अर्थात् संसार को निरन्तर जलाता हुआ ईति और भीति का प्रसार करता हुआ, आतंकवादी दुष्ट की तरह ग्रीष्म ताप दे रहा है। ग्रीष्म में सूर्य की तपन से धरती दरक जाती है और ऐसा प्रतीत होता है मानो सूर्य ने सम्पूर्ण पृथिवी के रस को खींच लिया हो। अन्न व जल के अभाव में पशु व पक्षी भटक कर मर जाते हैं। इसका वर्णन

करते हुए कवि लिखते हैं कि–

जना अन्नजलाभावाद् भ्रामं भ्रामं दिवङ्गताः।
इरणे तृषिताः क्षीणा भ्राम्यन्तः पशवो यथा।। (निदाघ. 6)

गर्मी में विशेषकर राजस्थान व गुजरात के मरुस्थल में जल का अत्यधिक अभाव होता है। राजस्थान में प्यास से नौ बच्चे मर गये तथा गुजरात में भूसे के बिना गाय मर गयीं। अखबार की इस खबर को कवि ने निम्न पद्य में वर्णित किया है। यथा–

राजस्थाने मृता बाला पिपासाकुलिता नव।
तथा गुर्जरदेशेऽपि मृता गावो भुसं विना।। (निदाघ. 7)

घर में दैनन्दिन कार्यों में भी पानी का अभाव रहता है अतः पेड़–पौधों को सींचने के लिए पानी कहाँ से आये? स्टेशनों पर और बाजारों में प्यास से आकुल लोग पानी के लिये जल खोजते हुए भटक रहे हैं।

अवस्थानेषु हट्टेषु पिपासापीडिता नराः।
बम्भ्रमन्ते जलं पातुमन्विष्यन्तः प्रणालकम्।। (निदाघ. 16)

गर्मी के दिनों में नलों पर पानी भरने के लिए स्त्रियों की लंबी कतारें देखने को मिलती हैं। ये दृश्य हम अपने इर्द–गिर्द के मोहल्लों में आये दिन देखते हैं। कवि ने इसका वर्णन भी निदाघ–लहरी में किया है–

जलमादातुमुत्कानां प्रतीक्षाकुलितात्मनाम्।
लोकप्रवालके पङ्क्तिः स्त्रीणां दीर्घा प्रजायते।। (निदाघ. 17)

वन्य सम्पदा प्रतिदिन नष्ट होती जा रही है। अतः विन्ध्याचल पर्वत भय से आकुल है। विन्ध्य प्रदेश से पेड़, रीछ, बारहसिंघा आदि जीव जन्तु कहीं चले गये हैं क्योंकि जब हमारी वन्यसम्पदा नष्ट हो जायेगी तो प्राणियों का जीवन दूभर हो जाता है अतः वह उस स्थान को छोड़ अन्यत्र चले जाते हैं, इसी का वर्णन कवि द्वारा किया गया है। यथा–

वृक्षा ऋक्षा, वराहा, क्व सिंहा व्याघ्रा मृगा गताः।
इत्यगस्त्यगतामाशां सोत्कण्ठश्च निरीक्षते।। (निदाघ. 37)

पर्यावरण प्रदूषण के कारण वर्षा भी समय पर नहीं होती है। आकाश में बादल तो घुमड़ते हैं लेकिन बरसते नहीं हैं, विलीन हो जाते हैं। अतः गाँव के सिवान पर सूखी क्यारी जल के लिए तरसती रहती है। इसका मुख्य कारण यही है कि लालची लोगों ने धरती को वनरहित बना दिया है। यथा–

काण्ठलोलुपवित्तेशैरवनी चावनीकृता।
नग्ना दीना न रमते दरिद्रा जनता यथा।। (निदाघ. 43)

वनों व पेड़ों के अभाव में नग्न व दीन बनी यह धरती नग्न व दीन दरिद्र जनता के समान प्रतीत होती है। पर्यावरण प्रदूषण आये दिन बढ़ रहा है। सूर्य की ऊष्मा व ताप मनुष्य को, पेड़–पौधों को तथा अन्य जीव जन्तुओं को जला सा रहा है। दावानल खण्डव वन में मानो ताण्डव सा कर रहा है। वृक्ष अर्जुन के द्वारा शरविद्ध होकर जल रहे हैं। यथा–

दाववह्निः प्रकुरुते खाण्डवे ताण्डवं यथा।

अर्जुनेनार्जुना दग्धाः शरविद्धा यथाऽखिलाः।। (निदाघ.21)

कवि ने सूर्य की अग्नि से तपती धरती को विविध प्रकार की उपमाओं के माध्यम से वर्णित किया है। यथा–

करदर्वीः खराश्चैताश्चालयत्मेष भास्करः।

धरामहाकहाहेऽस्मिन् भर्जिता मानवाश्चणाः।। (निदाघ. 22)

अर्थात् सूर्य अपनी किरणों के कठोर कडछुले चला रहा है और धरती की विशाल कड़ाही में मनुष्य रूपी चने भुन रहे हैं। गर्मी के दिनों में जल की कमी तो इतनी हो जाती है कि मनुष्य व प्राणियों को पीने के लिए पर्याप्त जल उपलब्ध नहीं हो पाता है। पेड़–पौधों को जल सींचना तो दूर की बात है। जल भरने के लिए लम्बी लाइनें और उनके लिए लड़ाई होना ग्रीष्म ऋतु में जनता के बीच के सामान्य दृश्य हैं। जल के लिए परस्पर लड़ाई देखकर पथिक (राहगीर) बिना पानी पिये ही आगे बढ़ जाता है। यथा–

पिपासाकुलितः पान्थोऽधरोष्ठं जिह्वया लिहन्।

अनादाय जलं याति कहलं वीक्ष्य चानयोः।। (निदाघ. 20)

ऐसी ग्रीष्म ऋतु में जब चारों ओर जल रहा हो तब मनुष्य उम्मीद करता है कि वर्षा हो जाये तो मनुष्य को थोड़ी राहत मिले लेकिन बादल गरजते जरुर हैं परन्तु बरसते नहीं हैं कवि ने इसकी तुलना वर्तमान नेता के भाषण से की है कि जो भाषण व वादे तो बहुत करते हैं परन्तु काम नहीं करते हैं। यथा–

समारूढनभोमञ्चो गर्जन् मेघो न वर्षति।

भाषमाणेऽक्रियो नेता जनताया पुरो यथा।। (निदाघ. 41)

ऐसी भीषण गर्मी में जब आवश्यकता है कि मेघ आये और बरसे तब मेघ मुंह चुराता हुआ निःशब्द निकल गया है। महाकवि कालिदास ने मेघदूत में संदेश पहुँचाने के लिए मेघ की कल्पना की थी परन्तु वर्तमान में मेघ की परिकल्पना भी संभव नहीं है। परन्तु कवि आशान्वित है कि इतनी तपन के पश्चात् वर्षा अवश्य होगी और मनुष्य को गर्मी से राहत मिलेगी। इस वर्णन के द्वारा कवि ने मनुष्य को सचेत भी किया है कि वनसम्पदा को न काटे और अधिक से अधिक पेड़ लगाये, जिससे पर्यावरण प्रदूषण दूर हो और ऋतु चक्र भी व्यवस्थित हो तथा भविष्य में कोविड–19 जैसी वैश्विक महामारी में उपलब्ध पर्याप्त प्राण वायु के द्वारा हम सभी अपने आपको सुरक्षित महसूस कर सकें, इसके लिए आत्मचिन्तन आवश्यक है।

***शोधार्थी**
****आचार्य**
राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा (राज.)